THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180682
UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H81.6 D58P

Accession No. GH 3219

Author दिनकर, रामधारी सिंह

Title 'परशुराम' की प्रतीक्षा

This book should be returned on or before the date last marked below.

परशुराम की प्रतीक्षा

रामधारी सिंह दिनकर

उदयाचल

राजेन्द्र नगर, पटना-४

प्रकाशक
केदारनाथ सिंह
अध्यक्ष
उदयाचल
राजेन्द्र नगर, पटना–४

प्रथम संस्करण, जनवरी, १९६३ ई०
द्वितीय संस्करण, अप्रेल, १९६५ ई०

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
ज्ञानेन्द्र शर्मा
जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राईवेट लि०,
१७८, रवीन्द्र सरणी (अपर चितपुर रोड), कलकत्ता–३

परशुराम की प्रतीक्षा

दो शब्द

(प्रथम संस्करण)

इस संग्रह में कुल अठारह कविताएँ हैं, जिनमें से पन्द्रह ऐसी हैं जो पहले किसी भी संग्रह में नहीं निकली थीं। केवल तीन रचनाएँ सामधेनी से लेकर यहाँ मिला दी गयी हैं। यह इसलिए कि इन कविताओं का असली समय अब आया है।

नेफा-युद्ध के प्रसंग में भगवान् परशुराम का नाम अत्यंत समीचीन है। जब परशुराम पर मातृ-हत्या का पाप चढ़ा, वे उससे मुक्ति पाने को सभी तीर्थों में घूमते फिरे, किन्तु, कहीं भी परशु पर से उनकी वज्रमूठ नहीं खुली यानी उनके मन से पाप का भान नहीं दूर हुआ। तब पिता ने उनसे कहा कि कैलाश के समीप जो ब्रह्मकुंड है, उसमें स्नान करने से यह पाप छूट जायगा। निदान, परशुराम हिमालय पर चढ़कर कैलाश पहुँचे और ब्रह्मकुंड में उन्होंने स्नान किया। ब्रह्मकुंड में डुबकी लगाते ही परशु उनके हाथ से छूट कर गिर गया अर्थात् उनका मन पाप-मुक्त हो गया।

तीर्थ को इतना जाग्रत देखकर परशुराम के मन में यह भाव जगा कि इस कुंड के पवित्र जल को पृथ्वी पर उतार देना चाहिए। अतएव, उन्होंने पर्वत काट कर कुंड से एक धारा निकाली, जिसका नाम, ब्रह्मकुंड से निकलने के कारण, ब्रह्मपुत्र हुआ। ब्रह्मकुंड का एक नाम लोहित-कुंड भी मिलता है। एक जगह यह भी लिखा है कि ब्रह्मपुत्र की धारा परशुराम ने ब्रह्मकुंड से ही निकाली थी, किन्तु, आगे चलकर वह धारा लोहित-कुंड नामक एक अन्य कुंड में समा गयी। परशुराम ने उस कुंड से भी धारा को आगे निकाला, इसलिए, ब्रह्मपुत्र का एक नाम लोहित भी मिलता है। स्वयं कालिदास ने ब्रह्मपुत्र को लोहित नाम से ही अभिहित किया है। और जहाँ ब्रह्मपुत्र नदी पर्वत से पृथ्वी पर अवतीर्ण होती है, वहाँ आज भी परशुराम-कुंड मौजूद है, जो हिन्दुओं का परम पवित्र तीर्थ माना जाता है।

लोहित में गिर कर जब परशुराम का कुठार पाप-मुक्त हो गया, तब उस कुठार से उन्होंने एक सौ वर्ष तक लड़ाइयाँ लड़ीं और समन्तपंचक में पाँच शोणित-ह्रद बना कर उन्होंने पितरों का तर्पण किया। जब उनका प्रतिशोध शान्त हो गया, उन्होंने कोंकण के पास पहुँच कर अपना कुठार समुद्र में फेंक दिया और वे नव-निर्माण में प्रवृत्त हो गये। भारत का वह भाग, जो अब कोंकण और केरल कहलाता है, भगवान परशुराम का ही बसाया हुआ है।

लोहित भारतवर्ष का बड़ा ही पवित्र भाग है। पुरा काल में वहाँ परशुराम का पाप-मोचन हुआ था। आज एक बार फिर लोहित में ही भारतवर्ष का पाप छूटा है। इसीलिए, भविष्य मुझे आशा से पूर्ण दिखायी देता है।

ताण्डवी तेज फिर से हुंकार उठा है,
लोहित में था जो गिरा, कुठार उठा है।

कलकत्ता
९-१-६३ ई०

रामधारी सिंह दिनकर

द्वितीय संस्करण की भूमिका

खुशी की बात है कि "परशुराम की प्रतीक्षा" का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। जनता ने इस कविता के प्रति जो प्रेम और उत्साह दिखाया है, वह इस बात का प्रमाण है कि हमारी जाति का समीपवर्ती भविष्य उज्ज्वल और महान् है।

प्रथम संस्करण में "आज कसौटी पर गांधी की आग है' नामक कविता में एक पद छपने से छूट गया था। वह कमी इस बार पूरी की जा रही है।

भागलपुर
७-३-६५ ई०

रामधारी सिंह दिनकर

सूचीक्रम

	विषय			पृष्ठ
१.	परशुराम की प्रतीक्षा	..	..	१
२.	जवानियाँ	..	..	३३
३.	हिम्मत की रौशनी	..	..	३७
४.	लोहे के मर्द	..	..	४०
५.	जनता जगी हुई है	..	..	४१
६.	आज कसौटी पर गाँधी की आग है	..	..	४३
७.	जौहर	..	..	४७
८.	आपद्धर्म	..	..	४९
९.	पाद-टिप्पणी	..	..	५४
१०.	शान्तिवादी	..	..	५७
११.	अहिंसावादी का युद्ध-गीत	..	..	५८
१२.	इतिहास का न्याय	..	..	५९
१३.	एनार्की	..	..	६१
१४.	एक बार फिर स्वर दो १	..	..	६९
१५.	एक बार फिर स्वर दो २	..	..	७१
१६.	तब भी आता हूँ मैं	..	..	७३
१७.	समर शेष है	..	..	७६
१८.	जवानी का झंडा	..	..	७९

परशुराम की प्रतीक्षा

खंड एक

गरदन पर किसका पाप वीर! ढोते हो?
शोणित से तुम किसका कलंक धोते हो?

उनका, जिनमें कारुण्य असीम तरल था,
तारुण्य-ताप था नहीं, न रंच गरल था;
सस्ती सुकीर्त्ति पा कर जो फूल गये थे,
निर्वीर्य कल्पनाओं में भूल गये थे;

गीता में जो त्रिपिटक-निकाय पढ़ते हैं,
तलवार गला कर जो तकली गढ़ते हैं;
शीतल करते हैं अनल प्रबुद्ध प्रजा का,
शेरों को सिखलाते हैं धर्म अजा का;

सारी वसुन्धरा में गुरु-पद पाने को,
प्यासी धरती के लिए अमृत लाने को
जो संत लोग सीधे पाताल चले थे,
(अच्छे हैं अब ; पहले भी बहुत भले थे।)

हम उसी धर्म की लाश यहाँ ढोते हैं,
शोणित से संतों का कलंक धोते हैं।

खंड दो

हे वीर बन्धु! दायी है कौन विपद का?
हम दोषी किसको कहें तुम्हारे वध का?

यह गहन प्रश्न ; कैसे रहस्य समझायें?
दस-बीस अधिक हों तो हम नाम गिनायें।
पर, कदम-कदम पर यहाँ खड़ा पातक है,
हर तरफ लगाये घात खड़ा घातक है।

घातक है, जो देवता-सदृश दिखता है,
लेकिन, कमरे में ग़लत हुक्म लिखता है।
जिस पापी को गुण नहीं ; गोत्र प्यारा है,
समझो, उसने ही हमें यहाँ मारा है।

जो सत्य जान कर भी न सत्य कहता है,
या किसी लोभ के विवश मूक रहता है,
उस कुटिल राजतंत्री कदर्य को धिक् है,
यह मूक सत्यहन्ता कम नहीं वधिक है।

चोरों के हैं जो हितू, ठगों के बल हैं,
जिनके प्रताप से पलते पाप सकल हैं,
जो छल-प्रपंच, सब को प्रश्रय देते हैं,
या चाटुकार जन से सेवा लेते हैं ;

यह पाप उन्हीं का हमको मार गया है,
भारत अपने घर में ही हार गया है।

है कौन यहाँ, कारण जो नहीं विपद का ?
किस पर जिम्मा है नहीं हमारे वध का ?
जो चरम पाप है, हमें उसी की लत है,
दैहिक बल को कहता यह देश ग़लत है।

नेता निमग्न दिन-रात शान्ति-चिंतन में,
कवि-कलाकार ऊपर उड़ रहे गगन में।
यज्ञाग्नि हिन्द में समिध नहीं पाती है,
पौरुष की ज्वाला रोज बुझी जाती है।

ओ बदनसीब अंधो! कमजोर अभागो!
अब भी तो खोलो नयन, नींद से जागो।
वह अघी, बाहुबल का जो अपलापी है,
जिसकी ज्वाला बुझ गयी, वही पापी है।

जब तक प्रसन्न यह अनल, सुगुण हँसते हैं;
है जहाँ खड्ग, सब पुण्य वहीं बसते हैं।
वीरता जहाँ पर नहीं, पुण्य का क्षय है,
वीरता जहाँ पर नहीं, स्वार्थ की जय है।

तलवार पुण्य की सखी, धर्मपालक है,
लालच पर अंकुश कठिन, लोभ-सालक है।
असि छोड़, भीरु बन जहाँ धर्म सोता है,
पातक प्रचंडतम वहीं प्रकट होता है।

तलवारें सोतीं जहाँ बन्द म्यानों में,
किस्मतें वहाँ सड़ती हैं तहखानों में।
बलिवेदी पर बालियाँ-नथें चढ़ती हैं,
सोने की ईंटें, मगर, नहीं कढ़ती हैं।

पूछो कुबेर से, कब सुवर्ण वे देंगे?
यदि आज नहीं तो सुयश और कब लेंगे?
तूफान उठेगा, प्रलय-वाण छूटेगा,
है जहाँ स्वर्ण, बम वहीं, स्यात्, फूटेगा।

जो करें, किन्तु, कंचन यह नहीं बचेगा,
शायद, सुवर्ण पर ही संहार मचेगा।
हम पर अपने पापों का बोझ न डालें,
कह दो सब से, अपना दायित्व सँभालें।

कह दो प्रपंचकारी, कपटी, जाली से,
आलसी, अकर्मठ, काहिल, हड़ताली से,
सी लें जबान, चुपचाप काम पर जायें,
हम यहाँ रक्त, वे घर में स्वेद बहायें।

हम देंगे तुम को विजय, हमें तुम बल दो,
दो शस्त्र और अपना संकल्प अटल दो।
हों खड़े लोग कटिबद्ध वहाँ यदि घर में,
है कौन हमें जीते जो यहाँ समर में?

हो जहाँ कहीं भी अनय, उसे रोको रे!
जो करें पाप शशि-सूर्य, उन्हें टोको रे!

जा कहो, पुण्य यदि बढ़ा नहीं शासन में,
या आग सुलगती रही प्रजा के मन में;
तामस बढ़ता यदि गया ढकेल प्रभा को,
निर्बंध पंथ यदि मिला नहीं प्रतिभा को,

रिपु नहीं, यही अन्याय हमें मारे
अपने घर में ही फिर स्वदेश हारे

खंड तीन

किरिचों पर कोई नया स्वप्न ढोते हो?
किस नयी फसल के बीज वीर! बोते हो?

दुर्दान्त दस्यु को सेल हूलते हैं हम;
यम की दंष्ट्रा से खेल झूलते हैं हम।
वैसे तो कोई बात नहीं कहने को,
हम टूट रहे केवल स्वतंत्र रहने को।

सामने देशमाता का भव्य चरण है,
जिह्वा पर जलता हुआ एक, बस, प्रण है,
काटेंगे अरि का मुण्ड कि स्वयं कटेंगे,
पीछे, परन्तु, सीमा से नहीं हटेंगे।

फूटेगी खर निर्झरी तप्त कुण्डों से,
भर जायेगा नगराज रुण्ड-मुण्डों से।
माँगेगी जो रणचण्डी भेंट, चढ़ेगी,
लाशों पर चढ़ कर आगे फौज बढ़ेगी।

पहली आहुति है अभी, यज्ञ चलने दो,
दो हवा, देश की आग जरा जलने दो।
जब हृदय-हृदय पावक से भर जायेगा,
भारत का पूरा पाप उतर जायेगा,

देखोगे, कैसा प्रलय चंड होता है!
असिवन्त हिन्द कितना प्रचंड होता है!

बाँहों से हम अम्बुधि अगाध थाहेंगे,
धँस जायेगी यह धरा, अगर चाहेंगे।
तूफान हमारे इंगित पर ठहरेंगे,
हम जहाँ कहेंगे, मेघ वहीं घहरेंगे।

जो असुर, हमें सुर समझ, आज हँसते हैं,
वंचक शृगाल भूँकते, साँप डँसते हैं,
कल यही कृपा के लिए हाथ जोड़ेंगे,
भृकुटी विलोक दुष्टता-द्वन्द्व छोड़ेंगे।

गरजो, अम्बर को भरो रणोच्चारों से,
क्रोधांध रोर, हाँकों से, हुंकारों से।
यह आग मात्र सीमा को नहीं लपट है,
मूढ़ो! स्वतंत्रता पर ही यह संकट है।

जातीय गर्व पर क्रूर प्रहार हुआ है,
माँ के किरीट पर ही यह वार हुआ है।
अब जो सिर पर आ पड़े, नहीं डरना है,
जनमे हैं तो दो बार नहीं मरना है।

कुत्सित कलंक का बोध नहीं छोड़ेंगे,
हम बिना लिये प्रतिशोध नहीं छोड़ेंगे,
अरि का विरोध-अवरोध नहीं छोड़ेंगे,
जब तक जीवित हैं, क्रोध नहीं छोड़ेंगे।

गरजो हिमाद्रि के शिखर, तुंग पाटों पर,
गुलमर्ग, विंध्य, पश्चिमी, पूर्व घाटों पर,
भारत-समुद्र की लहर, ज्वार-भाटों पर,
गरजो, गरजो मीनार और लाटों पर।

खँडहरों, भग्न कोटों में, प्राचीरों में,
जाह्नवी, नर्मदा, यमुना के तीरों में, —
कृष्णा-कछार में, कावेरी-कूलों में,
चित्तौड़-सिंहगढ़ के समीप धूलों में—

सोये हैं जो रणबली, उन्हें टेरो रे!
नूतन पर अपनी शिखा प्रत्न फेरो रे!

झकझोरो, झकझोरो महान् सुप्तों को,
टेरो, टेरो चाणक्य-चंद्रगुप्तों को;
विक्रमी तेज, असि की उद्दाम प्रभा को,
राणा प्रताप, गोविन्द, शिवा सरजा को;

वैराग्यवीर, बन्दा फकीर भाई को,
टेरो, टेरो माता लक्ष्मीबाई को।

आजन्म सहा जिसने न व्यंग्य थोड़ा था,
आजिज आ कर जिसने स्वदेश छोड़ा था,
हम हाय, आज तक जिसको गुहराते हैं,
'नेताजी अब आते हैं, अब आते हैं';

साहसी, शूर-रस के उस मतवाले को,
टेरो, टेरो आज़ाद हिन्दवाले को।

खोजो, टीपू सुलतान कहाँ सोये हैं?
अशफ़ाक़ और उसमान कहाँ सोये हैं?
बमवाले वीर जवान कहाँ सोये हैं?
वे भगतसिंह बलवान कहाँ सोये हैं?

जा कहो, करें अब कृपा, नहीं रूठें वे,
बम उठा बाज के सदृश व्यग्र टूटें वे।

हम मान गये, जब क्रान्तिकाल होता है,
सारी लपटों का रंग लाल होता है।
जाग्रत पौरुष प्रज्वलित ज्वाल होता है,
शूरत्व नहीं कोमल, कराल होता है।

वास्तविक मर्म जीवन का जान गये हैं,
हम भलीभाँति अघ को पहचान गये हैं।
हम समझ गये हैं खूब धर्म के छल को,
बम की महिमा को और विनय के बल को।

हम मान गये, वे धीर नहीं उद्धत थे,
वे सही, और हम विनयी बहुत गलत थे।
जा कहो, करें अब क्षमा, नहीं रूठें वे;
बम उठा बाज के सदृश व्यग्र टूटें वे।

साधना स्वयं शोणित कर धार रही है,
सतलज को साबरमती पुकार रही है।

वे उठें, देश उनके पीछे हो लेगा,
हम कहते हैं, कोई न व्यंग्य बोलेगा।
है कौन मूढ़, जो पिटक आज खोलेगा?
बोलेगा जय वह भी, न खड्ग जो लेगा।

वे उठें, हाय, नाहक विलंब होता है,
अपनी भूलों के लिए देश रोता है।

जिसका सारा इतिहास तप्त, जगमग है,
वीरता-वह्नि से भरी हुई रग-रग है,
जिसके इतने बेटे रण झेल चुके हैं,
शूली, किरीच, शोलों से खेल चुके हैं,

उस वीर जाति को बन्दी कौन करेगा?
विकराल आग मुट्ठी में कौन धरेगा?

केवल कृपाण को नहीं, त्याग-तप को भी,
टेरो, टेरो साधना, यज्ञ, जप को भी।
गरजो, तरंग से भरी आग भड़काओ,
हों जहाँ तपी, तप से तुम उन्हें जगाओ।

युग-युग से जो ऋद्धियाँ यहाँ उतरी हैं,
सिद्धियाँ धर्म की जो भी छिपी, धरी हैं;
उन सभी पावकों से प्रचण्डतम रण दो,
शर और शाप, दोनों को आमंत्रण दो।

चिंतको! चिंतना को तलवार गढ़ो रे!
ऋषियो! कृशानु-उद्दीपक मंत्र पढ़ो रे!
योगियो! जगो, जीवन की ओर बढ़ो रे!
बन्दूकों पर अपना आलोक मढ़ो रे!

है जहाँ कहीं भी तेज, हमें पाना है,
रण में समग्र भारत को ले जाना है।

पर्वतपति को आमूल डोलना होगा,
शंकर को ध्वंसक नयन खोलना होगा।
असि पर अशोक को मुण्ड तोलना होगा,
गौतम को जयजयकार बोलना होगा।

यह नहीं शान्ति की गुफा, युद्ध है, रण है,
तप नहीं, आज केवल तलवार शरण है।
ललकार रहा भारत को स्वयं मरण है,
हम जीतेंगे यह समर, हमारा प्रण है।

खंड चार

कुछ पता नहीं, हम कौन बीज बोते हैं ;
है कौन स्वप्न, हम जिसे यहाँ ढोते हैं।

पर, हाँ, वसुधा दानी है, नहीं कृपण है,
देता मनुष्य जब भी उसको जल-कण है ;
यह दान वृथा वह कभी नहीं लेती है,
बदले में कोई दूब हमें देती है।

पर, हमने तो सींचा है उसे लहू से,
चढती उमंग की कलियों की खुशबू से।
क्या यह अपूर्व बलिदान पचा वह लेगी ?
उद्दाम राष्ट्र क्या हमें नहीं वह देगी ?

ना, यह अकाण्ड दुष्काण्ड नहीं होने का,
यह जगा देश अब और नहीं सोने का।
जब तक भीतर की गाँस नहीं कढ़ती है,
श्री नहीं पुनः भारत-मुख पर चढ़ती है,

कैसे स्वदेश को रूह चैन पायेगी ?
किस नर-नारी को भला नींद आयेगी ?

परशुराम की प्रतीक्षा

कुछ सोच रहा है समय राह में थम कर,
है ठहर गया सहसा इतिहास सहम कर।
सदियों में शिव का अचल ध्यान डोला है,
तोपों के भीतर से भविष्य बोला है।

चोटें पड़तीं यदि रहीं, शिला टूटे
भारत में कोई नयी धार फूटे

हम खड़े ध्वंस में जब भी कुछ गुनते हैं,
रथ के घर्घर का नाद कहीं सुनते हैं।
जिसकी आशा में खड़ा व्यग्र जन-जन है,
यह उसी वीर का, स्यात्, वज्र-स्यन्दन है।

अम्बर में जो अप्रतिम क्रोध छाया है,
पावक जो हिम को फोड़ निकल आया है,
वह किसी भाँति भी वृथा नहीं जायेगा,
आयेगा, अपना महा वीर आयेगा।

हाँ, वही, रूप प्रज्वलित विभासित नर का,
अंशावतार सम्मिलित विष्णु-शंकर का।
हाँ, वही, दुरित से जो न सन्धि करता है,
जो संत धर्म के लिए खड्ग धरता है।

हाँ, वही फूटता जो समष्टि के मन से,
संचित करता है तेज व्यग्र जन-जन से।
हाँ, वही, न्याय-वंचित की जो आशा है,
निर्धनों, दीन-दलितों की अभिलाषा है।

विद्युत् बनकर जो चमक रहा चिंतन में,
गुंजित जिसका निर्घोष लोक-गर्जन में,
जो पतन-पुंज पर पावक बरसाता है,
यह उसी वीर का रथ दौड़ा आता है।

गाओ कवियो! जयगान, कल्पना तानो,
आ रहा देवता जो, उसको पहचानो।
है एक हाथ में परशु, एक में कुश है,
आ रहा नये भारत का भाग्यपुरुष है।

अंगार-हार अरपो, अर्चना करो रे!
आँखों की ज्वालाएँ मत देख डरो रे!
यह असुर भाव का शत्रु, पुण्य-त्राता है,
भयभीत मनुज के लिए अभय-दाता है।

यह वज्र वज्र के लिए, सुमों का सुम है;
यह और नहीं कोई, केवल हम-तुम हैं।
यह नहीं जाति का, न तो गोत्र-बन्धन का;
आ रहा मित्र भारत-भर के जन-जन का।

परशुराम की प्रतीक्षा

गांधी-गौतम का त्याग लिये आता है,
शंकर का शुद्ध विराग लिये आता है।
सच है, आँखों में आग लिये आता है,
पर, यह स्वदेश का भाग लिये आता है।

मत डरो, सन्त यह मुकुट नहीं माँगेगा,
धन के निमित्त यह धर्म नहीं त्यागेगा।
तुम सोओगे, तब भी यह ऋषि जागेगा,
ठन गया युद्ध तो बम-गोले दागेगा।

जब किसी जाति का अहं चोट खाता है,
पावक प्रचंड हो कर बाहर आता है
यह वही चोट खाये स्वदेश का बल है,
आहत भुजंग है, सुलगा हुआ अनल है।

विक्रमी रूप नूतन अर्जुन-जेता का,
आ रहा स्वयं यह परशुराम त्रेता का।
यह उत्तेजित, साकार, क्रुद्ध भारत है,
यह और नहीं कोई, विशुद्ध भारत है

पापों पर बनकर प्रलय-बाण छूटेगा,
यह क्लीव धर्म पर बाज-सदृश टूटेगा!
जो रुष्ट खड्ग से हैं, उनसे रूठेगा,
कृत्रिम विभाकरों का प्रकाश लूटेगा।

वह गरुड़ देश का नाग-पाश काटेगा,
अरि-मुण्डों से खाइयाँ-खोह पाटेगा।
विद्युतित जीभ से चाट भीति हर लेगा,
वह तुम्हें आप अपने समान कर लेगा।

रह जायगा वह नहीं ज्ञान सिखला कर,
दूरस्थ गगन में इन्द्रधनुष दिखला कर
वह लक्ष्यविन्दु तक तुम को ले जायेगा,
उँगलियाँ थाम मंजिल तक पहुँचायेगा

हर धड़कन पर वह सजल मेघ सिहरेगा,
गत और अनागत बीच व्यग्र बिहरेगा।
बरसेगा बन जलधार तृषित धानों पर,
बन तडिद्धार छूटेगा चट्टानों पर।

जब वह आयेगा, द्विधा-द्वन्द्व बिनसेगा,
आलिंगन में अवनी को व्योम कसेगा।
विज्ञान धर्म के धड़ से भिन्न न होगा,
भवितव्य भूत गौरव से छिन्न न होगा।

जब वह आयेगा, खल कुबुद्धि छोड़ेंगे,
सब साँप आप ही फण अपने तोड़ेंगे।
विषवाह-अभ्र गाँधी पर नहीं घिरेंगे,
शान्ति के नीड़ में गोले नहीं गिरेंगे।

खंड पाँच

(१)

सिखलायेगा वह, ऋत एक ही अनल है,
जिन्दगी नहीं वह, जहाँ नहीं हलचल है।
जिनमें दाहकता नहीं, न तो गर्जन है,
सुख की तरंग का जहाँ अंध वर्जन है,
जो सत्य राख में सने, रुक्ष, रूठे हैं,
छोड़ो उनको, वे सहो नहीं, झूठे हैं।

(२)

वराग्य छोड़ बाँहों की विभा सँभालो,
चट्टानों की छाती से दूध निकालो।
है रुकी जहाँ भी धार, शिलाएँ तोड़ो,
पीयूष चंद्रमाओं को पकड़ निचोड़ो।
चढ़ तुंग शैल-शिखरों पर सोम पियो रे!
योगियों नहीं, विजयी के सदृश जियो रे!

(३)

मत टिको मदिर, मधुमयी, शान्त छाया में,
भूलो मत उज्ज्वल ध्येय मोह-माया में।
लौलुप्य-लालसा जहाँ, वहीं पर क्षय है;
आनन्द नहीं, जीवन का लक्ष्य विजय है।
जृंभक, रहस्य-धूमिल मत ऋचा रचो रे!
सर्पित प्रसून के मद से बचो, बचो रे!

(४)

जब कुपित काल धीरता त्याग जलता है,
चिनगी बन फूलों का पराग जलता है,
सौन्दर्य-बोध बन नयी आग जलता है,
ऊँचा उठ कर कामार्त्त राग जलता है।
अंबर पर अपनी विभा प्रबुद्ध करो रे!
गरजे कृशानु, तब कंचन शुद्ध करो रे!

(५)

भामा ह्लादिनी-तरंग, तडिन्माला है,
वह नहीं काम की लता, वीर बाला है,
आधी हालाहल-धार, अर्ध हाला है।
जब भी उठती हुंकार युद्ध-ज्वाला है,
चंडिका कान्त को मुण्ड-माल देती है;
रथ के चक्के में भुजा डाल देती है।

(६)

खोजता पुरुष सौन्दर्य, त्रिया प्रतिभा को,
नारी चरित्र-बल को, नर मात्र त्वचा को।
श्री नहीं पाणि जिसके सिर पर धरता है,
भामिनी हृदय से उसे नहीं वरती है।
पाओ रमणी का हृदय विजय अपना कर,
या बसो वहाँ बन कसक वीर गति पा कर।

(७)

जिसकी बाँहें बलमयी, ललाट अरुण है,
भामिनी वही तरुणी, नर वही तरुण है।
है वही प्रेम जिसकी तरंग उच्छल है,
वारुणी-धार में मिश्रित जहाँ गरल है।
उद्दाम प्रीति वलिदान-बीज बोती है;
तलवार प्रेम से और तेज होती है।

(८)

पी जिस उमड़ता अनल, भुजा भरती है,
वह शक्ति सूर्य की किरणों में झरती है।
मरु के प्रदाह में छिपा हुआ जो रस है,
तूफान-अंधड़ों में जो अमृत-कलस है,
उस तपन-तत्त्व से हृदय-प्राण सींचो रे!
खींचो, भीतर आँधियाँ और खींचो रे!

(९)

छोड़ो मत अपनी आन, सीस कट जाये,
मत झुको अनय पर, भले व्योम फट जाये।
दो बार नहीं यमराज कंठ धरता है,
मरता है जो, एक ही बार मरता है।
तुम स्वयं मरण के मुख पर चरण धरो रे!
जीना हो तो मरने से नहीं डरो रे!

(१०)

स्वातंत्र्य जाति की लगन, व्यक्ति की धुन है,
बाहरी वस्तु यह नहीं, भीतरी गुण है।
नत हुए बिना जो अशनि-घात सहती है,
स्वाधीन जगत् में वही जाति रहती है।
वीरत्व छोड़ पर का मत चरण गहो रे!
जो पड़े आन, खुद ही सब आग सहो रे!

(११)

दासत्व जहाँ है, वहीं स्तब्ध जीवन है,
स्वातंत्र्य निरन्तर समर, सनातन रण है।
स्वातंत्र्य समस्या नहीं आज या कल की,
जागर्त्ति तीव्र वह घड़ी-घड़ी, पल-पल की।
पहरे पर चारों ओर सतर्क लगो रे!
धर धनुष-बाण उद्यत दिन-रात जगो रे!

(१२)

आँधियाँ नहीं जिसमें उमंग भरती हैं,
छातियाँ जहाँ संगीनों से डरती हैं,
शोणित के बदले जहाँ अश्रु बहता है,
वह देश कभी स्वाधीन नहीं रहता है।
पकड़ो अयाल, अंधड़ पर उछल चढ़ो रे!
किरिचों पर अपने तन का चाम मढ़ो रे!

(१३)

जब कभी अहं पर नियति चोट देती है,
कुछ चीज अहं से बड़ी जन्म लेती है।
नर पर जब भी भीषण विपत्ति आती है,
वह उसे और दुर्धर्ष बना जाती है।
चोटें खा कर बिफरो, कुछ अधिक तनो रे!
घधको, स्फुलिंग से बढ़ अंगार बनो रे!

(१४)

धन-धाम, ज्ञान-विज्ञान मात्र संबल है,
बस, एक मात्र बलिदान जाति का बल है।
सिर दने में जो लोग नहीं डरते हैं,
वे ही प्रभंजनों पर शासन करते हैं।
जब पड़े विपद, अपनी उमंग जाँचो रे!
विकराल काल के फण पर चढ़ नाचो रे!

(१५)

हैं खड़े हिंस्र वृक-व्याघ्र, खड़ा पशुबल है ;
ऊँची मनुष्यता का पथ नहीं सरल है।
ये हिंस्र साधु पर भी न तरस खाते हैं,
कंठी-माला के सहित चबा जाते हैं।
जो वीर काट कर इन्हें पार जायेगा,
उत्तुंग शृंग पर वही पहुँच पायेगा।

(१६)

जो पुरुष भूल शायक, कुठार को, असि को,
पूजता मात्र चिंतन, विचार को, मसि को,
सत्य का नहीं बहुमान किया करता है,
केवल सपनों का ध्यान किया करता है,
बस में उसके यह लोक न रह जायेगा।
है हवा स्वप्न, कर में वह क्यों आयेगा ?

(१७)

उपशम को ही जो जाति धर्म कहती है,
शम, दम, विराग को श्रेष्ठ कर्म कहती है,
धृति को प्रहार, क्षान्ति को वर्म कहती है,
अक्रोध, विनय को विजय-मर्म कहती है,
अपमान कौन, वह जिसको नहीं सहेगी ?
सब को असीस, सब का बन दास रहेगी।

(१८)

यह कठिन शाप सुकुमार धर्म-साधन का,
रण-विमुख, शान्त जीवन के आराधन का ;
जातियाँ पावकों से बच कर चलती हैं,
निर्वीर्य कल्पनाएँ रच कर चलती हैं।
वृन्तों पर जलते सूर्य छोड़ देती हैं,
चुन-चुन कर केवल चाँद तोड़ लेती हैं।

(१९)

दो उन्हें राम, तो मात्र नाम वे लेंगी,
विक्रमी शरासन से न काम वे लेंगी ;
नवनीत बना देतीं भट अवतारी को,
मोहन मुरलीधर पांचजन्य-धारी को।
पावक को बुझा तुषार बना देती हैं,
गाँधी को शीतल क्षार बना देती हैं।

(२०)

है सही, बना पहले पृथ्वी से जल था,
पर, बहुत पूर्व उससे बन चुका अनल था।
जब प्रथम-प्रथम हो उठा तत्त्व चंचल था,
प्रेरणा-स्रोत पर विनय नहीं थी, बल था।
है अनल ब्रह्म, पावक-तरंग जीवन है,
अब समझा, क्यों ज्वाला अभंग जीवन है?

(२१)

भव को न अग्नि करने को क्षार बनी थी,
रखने को, बस, उज्ज्वल आचार बनी थी।
शिव नहीं, शक्ति सर्जन-आधार बनी थी ;
जब बनी सृष्टि, पहले तलवार बनी थी।
वह कालकंठ स्रज नहीं, न कुंकुम-रज है।
सत्य ही कहा गुरु ने, अकाल असि-ध्वज है।

(२२)

स्वर में पावक यदि नहीं, वृथा वन्दन है,
वीरता नहीं, तो सभी विनय क्रन्दन है।
सिर पर जिसके असिघात, रक्त-चन्दन है,
भ्रामरी उसी का करती अभिनन्दन है।
दानवी रक्त से सभी पाप धुलते हैं,
ऊँची मनुष्यता के पथ भी खुलते हैं।

(२३)

सत्य है, धर्म का परम रूप यव-कुश है,
अत्यय-अधर्म पर परशु मात्र अंकुश है।
पर, जब कुठार की धार क्षीण होती है,
स्वयमेव दर्भ की श्री मलीन होती है।
हो धर्म ध्येय, तो भजो प्रथम बाँहों को।
तोलो अपना बल-वीर्य, नहीं आहों को।

(२४)

हैं दुखी मेष, क्यों लहू शेर चखते हैं,
नाहक इतने क्यों दाँत तेज़ रखते हैं।
पर, शेर द्रवित हो दशन तोड़ क्यों लेंगे?
मेषों के हित व्याघ्रता छोड़ क्यों देंगे?
एक ही पन्थ, तुम भी आघात हनो रे!
मेषत्व छोड़ मेषो! तुम व्याघ्र बनो रे!

(२५)

जो अड़े, शेर उस नर से डर जाता है,
है विदित, व्याघ्र को व्याघ्र नहीं खाता है।
सच पूछो तो अब भी सच यही वचन है,
सभ्यता क्षीण, बलवान हिंस्र कानन है।
एक ही पन्थ अब भी जग में जीने का,
अभ्यास करो छागियो! रक्त पीने का।

(२६)

जब शान्तिवादियों ने कपोत छोड़े थे,
किसने आशा से नहीं हाथ जोड़े थे?
पर, हाय, धर्म यह भी धोखा है, छल है;
उजले कबूतरों में भी छिपा अनल है।
पंजों में इनके धार धरी होती है,
कइयों में तो बारूद भरी होती है।

(२७)

जो पुण्य-पुण्य बक रहे, उन्हें बकने दो,
जैसे सदियाँ थक चुकीं, उन्हें थकने दो।
पर, देख चुके हम तो सब पुण्य कमा कर,
सौभाग्य, मान, गौरव, अभिमान गँवा कर।
वे पियें शीत, तुम आतप-घाम पियो रे!
वे जपें नाम, तुम बन कर राम जियो रे!

(२८)

हैं जिन्हें दाँत, उनसे अदन्त कहते हैं,
यानी शूरों को देख सन्त कहते हैं,
'तुम तुड़ा दाँत क्यों नहीं पुण्य पाते हो?'
यानी तुम भी क्यों भेंड न बन जाते हो?
पर कौन शेर भेंड़ों की बात सुनेगा,
जिन्दगी छोड़ मरन की राह चुनेगा?

(२९)

सुर नहीं शान्ति आँसू बिखेर लायेंगे;
मृग नहीं, युद्ध का शमन शेर लायेंगे।
विनयी न विनय को लगा टेर लायेंगे,
लायेंगे तो वह दिन दिलेर लायेंगे।
बोलती बन्द होगी पशु की जब भय से,
उतरेगी भू पर शान्ति छूट संशय से।

(३०)

वे दश शान्ति के सब से शत्रु प्रबल हैं,
जो बहुत बड़े होने पर भी दुर्बल हैं,
हैं जिनके उदर विशाल, बाँह छोटी है,
भोथरे दाँत, पर, जीभ बहुत मोटी है।
औरों के पाले जो अलज्ज पलते हैं,
अथवा शेरों पर लदे हुए चलते हैं।

(३१)

सिंहों पर अपना अतुल भार मत डालो,
हाथियो! स्वयं अपना तुम बोझ सँभालो।
यदि लदे फिरे, यों ही, तो पछताओगे,
शव मात्र आप अपना तुम रह जाओगे।
यह नहीं मात्र अपकीर्त्ति, अनय की अति है।
जानें, कैसे सहती यह दृश्य प्रकृति है!

(३२)

उद्देश्य जन्म का नहीं कीर्ति या धन है,
सुख नहीं, धर्म भी नहीं, न तो दर्शन है;
विज्ञान, ज्ञान-बल नहीं, न तो चिंतन है,
जीवन का अन्तिम ध्येय स्वयं जीवन है।
सब से स्वतंत्र यह रस जो अनघ पियेगा,
पूरा जीवन केवल वह वीर जियेगा।

(३३)

जीवन गति है, वह नित अरुद्ध चलता है,
पहला प्रमाण पावक का, वह जलता है।
सिखला निरोध-निर्ज्वलन धर्म छलता है,
जीवन तरंग-गर्जन है, चंचलता है।
धधको अभंग, पल-विपल अरुद्ध जलो रे!
धारा रोके यदि राह, विरुद्ध चलो रे!

(३४)

जीवन अपनी ज्वाला से आप ज्वलित है,
अपनी तरंग से आप समुद्वेलित है।
तुम वृथा ज्योति के लिए कहाँ जाओगे?
है जहाँ आग, आलोक वहीं पाओगे।
क्या हुआ, पत्र यदि मृदुल, सुरम्य कली है?
सब मृषा, तना तरु का यदि नहीं बली है।

(३५)

धन स मनुष्य का पाप उभर आता है,
निर्धन जीवन यदि हुआ, बिखर जाता है।
कहते हैं जिसको सुयश-कीर्त्ति, सो क्या है?
कानों की यदि गुदगुदी नहीं, तो क्या है?
यश-अयश-चिन्तना भूल स्थान पकड़ो रे!
यश नहीं, मात्र जीवन के लिए लड़ो रे!

(३६)

कुछ समझ नहीं पड़ता, रहस्य यह क्या है!
जानें, भारत में बहती कौन हवा है!
गमलों में हैं जो खड़े, सुरम्य-सुदल हैं,
मिट्टी पर के ही पेड़ दीन-दुर्बल हैं।
जब तक है यह वैषम्य, समाज सड़ेगा,
किस तरह एक हो कर यह देश लड़ेगा?

(३७)

सब से पहले यह दुरित-मूल काटो रे!
समतल पीटो, खाइयाँ-खड्ड पाटो रे!
बहुपाद वटों की शिरा-सोर छाँटो रे!
जो मिले अमृत, सब को समान बाँटो रे!
वैषम्य घोर जब तक यह शेष रहेगा,
दुर्बल का ही दुर्बल यह देश रहेगा।

(३८)

यह बड़े भाग्य की बात! सिन्धु चंचल है,
मथ रहा आज फिर उसे मन्दराचल है।
छोड़ता व्यग्र फूत्कार सर्प पल-पल है
गर्जित तरंग, प्रज्वलित वाड़वानल है।
लो कढ़ा जहर! संसार जला जाता है।
ठहरो, ठहरो, पीयूष अभी आता है।

(३९)

पर, सावधान! जा कहो उन्हें समझा कर,
सुर पुनः भाग जायें मत सुधा चुरा कर।
जो कढ़ा अमृत, सम-अंश बाँट हम लेंगे,
इस बार जहर का भाग उन्हें भी देंगे।
वैषम्य शेष यदि रहा, क्षान्ति डोलेगी,
इस रण पर चढ़ कर महा क्रान्ति बोलेगी।

(४०)

झंझा-झकोर पर चढ़ो, मस्त झूलो रे!
वृन्तों पर बन पावक-प्रसून फूलो रे!
दाएँ-बाएँ का द्वन्द्व आज भूलो रे!
सामने पड़े जो शत्रु, शूल हूलो रे!
वृक हो कि व्याल, जो भी विरुद्ध आयेगा,
भारत से जीवित लौट नहीं पायेगा।

(४१)

निर्जर पिनाक हर का टंकार उठा है,
हिमवन्त हाथ में ले अंगार उठा है,
ताण्डवी तेज फिर से हुंकार उठा है,
लोहित में था जो गिरा, कुठार उठा है।
संसार धर्म की नयी आग देखेगा,
मानव का करतब पुनः नाग देखेगा।

(४२)

माँगो, माँगो वरदान धाम चारों से,
मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों, गुरुद्वारों से।
जय कहो वीर विक्रम की, शिवा बली की,
उस धर्मखड्ग, ईश्वर के सिंह, अली की।
जब मिले काल, 'जय महाकाल!' बोलो रे!
सत् श्री अकाल! सत् श्री अकाल! बोलो रे!

७-१-६३]

जवानियाँ

नय सुरों में शिंजिनी बजा रहीं जवानियाँ,
लहू में तैर-तैर के नहा रहीं जवानियाँ।

(१)

प्रभात-शृंग से घड़े सुवर्ण के उँड़ेलती,
रँगी हुई घटा में भानु को उछाल खेलती,
तुषार-जाल में सहस्र हेम-दीप बालती,
समुद्र की तरंग में हिरण्य-धूलि डालती ;
सुनील चीर को सुवर्ण-बीच बोरती हुई,
धरा के ताल-ताल में उसे निचोड़ती हुई ;
उषा के हाथ की विभा लुटा रहीं जवानियाँ।

(२)

घनों के पार बैठ तार बीन के चढ़ा रहीं,
सुमन्द्र नाद में मलार विश्व को सुना रहीं ;
अभी कढ़ीं लटें निचोड़ती, जमीन सींचती,
अभी बढ़ीं घटा में क्रुद्ध काल-खड्ग खींचती ;
पड़ीं व' टूट देख लो, अजस्र वारिधार में,
चलीं व' बाढ़ बन, नहीं समा सकीं कगार में।
रुकावटों को तोड़-फोड़ छा रहीं जवानियाँ।

(३)

हटो तमीचरो, कि हो चुकी समाप्त रात है,
कुहेलिका के पार जगमगा रहा प्रभात है।
लपेट में समेटता रुकावटों को तोड़ के,
प्रकाश का प्रवाह आ रहा दिगन्त फोड़ के।
विशीर्ण डालियाँ महीरुहों की टूटने लगीं ;
शमा की झालरें व' टक्करों से फूटने लगीं।
चढ़ी हुई प्रभंजनों पै आ रहीं जवानियाँ।

(४)

घटा को फाड़ व्योम-बीच गूँजती दहाड़ है,
ज़मीन डोलती है और डोलता पहाड़ है ;
भुजंग दिग्गजों से, कूर्मराज त्रस्त कोल से,
धरा उछल-उछल के बात पूछती खगोल से ;
कि क्या हुआ है सृष्टि को ? न एक अंग शान्त है ;
प्रकोप रुद्र का कि कल्पनाश है, युगान्त है ?
जवानियों की धूम-सी मचा रहीं जवानियाँ।

(५)

समस्त सूर्य-लोक एक हाथ में लिये हुए,
दबा के एक पाँव चन्द्र-भाल पै दिये हुए,
खगोल में धुआँ बिखेरती प्रतप्त श्वास से,
भविष्य को पुकारती हुई प्रचण्ड हास से ;
उछाल देव-लोक को मही से तोलती हुई,
मनुष्य के प्रताप का रहस्य खोलती हुई ;
विराट रूप विश्व को दिखा रहीं जवानियाँ।

(६)

मही प्रदीप्त है, दिशा-दिगन्त लाल-लाल है,
व' देख लो, जवानियों की जल रही मशाल है ;
व' गिर रहे हैं आग में पहाड़ टूट-टूट के,
व' आसमाँ से आ रहे हैं रत्न छूट-छूट के ;
उठो, उठो कुरीतियों की राह तुम भी रोक दो,
बढ़ो, बढ़ो, कि आग में अनीतियों को झोंक दो।
परम्परा की होलिका जला रहीं जवानियाँ।

(७)

व' देख लो, खड़ी है कौन तोप के निशान पर ;
व' देख लो, अड़ी है कौन जिन्दगी की आन पर।
व' कौन थी, जो कूद के अभी गिरी है आग में ?
लहू बहा कि तेल आ गिरा नया चिराग में ?
अहा, व' अश्रु था कि प्रेम का दबा उफान था ?
हँसी थी या कि चित्र में सजीव, मौन गान था ?
अलभ्य भेंट काल को चढ़ा रहीं जवानियाँ।

(८)

अहा, कि एक रात चाँदनी-भरी सुहावनी,
अहा, कि एक बात प्रेम की बड़ी लुभावनी ;
अहा, कि एक याद दूब-सी मरुप्रदेश में,
अहा, कि एक चाँद जो छिपा कराल वेश में ;
अहा, पुकार कर्म की ; अहा, री पीर मर्म की,
अहा, कि प्रीति भेंट जा चढ़ी कठोर धर्म की।
अहा, कि आँसुओं में मुस्करा रहीं जवानियाँ।

१९४५ ई०]

हिम्मत की रौशनी

उसे भी देख, जो भीतर भरा अङ्गार है साथी !

(१)

सियाही देखता है, देखता है तू अँधेरे को,
किरण को घेर कर छाये हुए विकराल घेरे को।
उसे भी देख, जो इस बाहरी तम को बहा सकती,
दबी तेरे लहू में रौशनी की धार है साथी !

(२)

पड़ी थी नींव तेरी चाँद-सूरज के उजाले पर,
तपस्या पर, लहू पर, आग पर, तलवार-भाले पर।
डरे तू ना-उमेदी से, कभी यह हो नहीं सकता,
कि तुझ में ज्योति का अक्षय भरा भण्डार है साथी !

(३)

बवण्डर चीखता लौटा, फिरा तूफान जाता है,
डराने के लिए तुझको नया भूडोल आता है ;
नया मैदान है राही, गरजना है नये बल से ;
उठा, इस बार वह जो आखिरी हुंकार है साथी !

(४)

विनय की रागिनी में बीन के ये तार बजते हैं,
रुदन बजता, सजग हो क्षोभ-हाहाकार बजते हैं।
बजा इस बार दीपक-राग कोई आखिरी सुर में ;
छिपा इस बीन में ही आगवाला तार है साथी !

(५)

गरजते शेर आये, सामने फिर भेड़िये आये,
नखों को तेज, दाँतों को बहुत तीखा किये आये।
मगर, परवाह क्या ? हो जा खड़ा तू तानकर उसको,
छिपी जो हड्डियों में आग-सी तलवार है साथी !

(६)

शिखर पर तू, न तेरी राह बाकी दाहिने-बायें,
खड़ी आगे दरी यह मौत-सी विकराल मुँह बाये।
कदम पीछे हटाया तो अभी ईमान जाता है,
उछल जा, कूद जा, पल में दरी यह पार है साथी !

(७)

न रुकना है तुझे झण्डा उड़ा केवल पहाड़ों पर,
विजय पानी है तुझको चाँद-सूरज पर, सितारों पर।
वधू रहती जहाँ नरवीर की, तलवारवालों की,
ज़मीं वह इस ज़रा-से आसमाँ के पार है साथी!

(८)

भुजाओं पर मही का भार फूलों-सा उठाये जा,
कँपाये जा गगन को, इन्द्र का आसन हिलाये जा।
जहाँ में एक ही है रौशनी, वह नाम की तेरे,
ज़मीं को एक तेरी आग का आधार है साथी!

१९४६ ई०]

लोहे के मर्द

पुरुष वीर बलवान,
देश की शान,
हमारे नौजवान
घायल होकर आये हैं।

कहते हैं, ये पुष्प, दीप,
अक्षत क्यों लाये हो?

हमें कामना नहीं सुयश-विस्तार की,
फूलों के हारों की, जय-जयकार की।

तड़प रही घायल स्वदेश की शान है।
सीमा पर संकट में हिन्दुस्तान है।

ले जाओ आरती, पुष्प, पल्लव हरे,
ले जाओ ये थाल मोदकों से भरे।

तिलक चढ़ा मत और हृदय में हूक दो,
दे सकते हो तो गोली-बन्दूक दो।

१-११-६२]

जनता जगी हुई है

जनता जगी हुई है।
क्रुद्ध सिहिनी कुछ इस चिंता से भी ठगी हुई है।
कहाँ गये वे, जो पानी में आग लगाते थे?
बजा-बजा दुंदुभी रात-दिन हमें जगाते थे?
धरती पर है कौन? कौन है सपनों के डेरों में?
कौन मुक्त? है घिरा कौन प्रस्तावों के घेरों में?
सोच न कर चण्डिके! भ्रमित हैं जो, वे भी आयेंगे।
तेरी छाया छोड़ अभागे शरण कहाँ पायेंगे?

जनता जगी हुई है।
भरत-भूमि में किसी पुण्य-पावक ने किया प्रवेश।
धधक उठा है एक दीप की लौ-सा सारा देश।
खौल रहीं नदियाँ, मेघों में शंपा लहक रही है।
फट पड़ने को विकल शैल की छाती दहक रही है।
गर्जन, गूंज, तरंग, रोष, निर्घोष, हाँक, हुंकार!
जानें, होगा शमित आज क्या खाकर पारावार!

जनता जगी हुई है।
ओ गाँधी के शान्ति-सदन में आग लगानवाले!
कपटी, कुटिल, कृतघ्न, आसुरी महिमा के मतवाले?
वैसे तो, मन मार शील से हम विनम्र जीते हैं,
आततायियों का शोणित, लेकिन, हम भी पीते हैं।
मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार,
सावधान! ले रहा परशुधर फिर नवीन अवतार।

जनता जगी हुई है।
मूंद-मूंद वे पृष्ठ, शील का गुण जो सिखलाते हैं,
वज्रायुध को पाप, लौह को दुर्गुण बतलाते हैं।
मन की व्यथा समेट, न तो अपनेपन से हारेगा।
मर जायेगा स्वयं, सर्प को अगर नहीं मारेगा।
पर्वत पर से उतर रहा है महा भयानक व्याल।
मधुसूदन को टेर, नहीं यह सुगत बुद्ध का काल।

जनता जगी हुई है।
नाचे रणचंडिका कि उतरे प्रलय हिमालय पर से,
फटे अतल पाताल कि झर-झर झरे मृत्यु अंबर से;
झेल कलेजे पर, क़िस्मत की जो भी नाराज़ी है,
खेल मरण का खेल, मुक्ति की यह पहली बाज़ी है।
सिर पर उठा वज्र, आँखों पर ले हरि का अभिशाप।
अग्नि-स्नान के बिना धुलेगा नहीं राष्ट्र का पाप।

३-११-६२]

आज कसौटी पर गाँधी की आग है

(१)

अब भी पशु मत बनो,
कहा है वीर जवाहरलाल ने।

अंधकार को दबी रौशनी की धीमी ललकार;
कठिन घड़ी में भी भारत के मन की धीर पुकार।
सुनती हो नागिनी! समझती हो इस स्वर को?
देखा है क्या कहीं और भू पर उस नर को—
जिसे न चढ़ता जहर,
न तो उन्माद कभी आता है;
समर-भूमि में भी जो
पशु होने से घबराता है?

(२)

अब भी पशु मत बनो,
कहा है वीर जवाहरलाल ने।

ऊँचाई की बात, किन्तु, कुछ चिन्ता भी है।
क्या मनुष्य मानव हो कर लड़ने जाता है?

क्रूर दानवों के दुर्दान्त समूह ने,
वृकों, हिंस्र पशुओं, बाघों के व्यूह ने—
घेर लिया है जिसे, अगर वह नर पशुओं पर,
तुलसी की कंठी छू-छू, रो-रो कर वार करेगा,
पशु की होगी विजय, पराजय मानवता की
और, अन्त में, द्विधाग्रस्त मानव भी स्वयं मरेगा।

(३)

अब भी पशु मत बनो,
कहा है वीर जवाहरलाल ने।

पर, यह सुधा-तरंग कौन पीने देता है?
बिना हुए पशु आज कौन जीने देता है?

शुरू हो गया भैंस-भैंस का खेल,
जानवर तू भी बन ले;
पशु की तरह डकार,
यही वन की भाषा है।
सिर पर तीखे सींग बाँध,
बघनखे पहन ले।

सकुच रहा? क्या बर्बरता का खेल
नहीं खुल कर खेलेगा?
तोड़ेगा सिर नहीं विकट
विषधर भुजंग का?

भैंसों की हुरपेट
पीठ पर ही झेलेगा ?

तो कहता हूँ, सुन रहस्य की बात,
खड्ग सींचा जाता है–
नहीं युद्ध में गंगा के
जल की फुहार से।
अजब बात तू लड़े
आततायी असुरों से
निर्ममता से नहीं,
दया, ममता, दुलार से !

दबा पुण्य का वेग,
अँखड़ियाँ गीली मत होने दे ;
कस कर पकड़ कृपाण,
मुट्ठियाँ ढीली मत होने दे।

जहाँ शस्त्रबल नहीं,
शास्त्र पछताते या रोते हैं।
ऋषियों को भी सिद्धि
तभी तप से मिलती है,
जब पहरे पर स्वयं
धनुर्धर राम खड़े होते हैं।

पापी कोई और, चित्त क्यों म्लान करें हम ?
भारत में जो निधि मनुष्यता की संचित है,
क्यों पशुत्व-भय से उसका बलिदान करें हम ?

किसे लीलने को आयी यह लाल लपट है ?
गाँधी पर यदि नहीं, और किस पर संकट है ?

सकुच गये यदि हम अहिंस्र
हिंसा के हाहाकार से,
कौन बचा पायेगा
गाँधी को पशुओं की मार से ?

समय पूछता है, ज्वाला है कहाँ अभय की ?
कहाँ सत्य का वज्र, लौहमय रीढ़ विनय की ?

कहाँ सिन्धु का अनल,
अधर पर जिसके इतना झाग है ?
आज अहिंसा नहीं,
कसौटी पर गाँधी की आग है !

११-११-६२]

जौहर

जगता तभी जहान,
उसे जब विपद जगाती है।

हँसी भूल बच्चे चिंतन करने लगते हैं।
बहनें जातीं डूब किसी गंभीर ध्यान में।
कुसुम खोजने लगते अपनी आग,
ऊँघती नदी तेज होकर हहराती है।

पेड़ खड़े कर कान प्रलय की चरण-चाप सुनते हैं,
हवा आँकने को भविष्य की आहट रुक जाती है,
आर-पार अम्बर के जब शंपा चिल्लाती है।

भारत में जब कभी कड़कता वज्र,
सती भामिनियाँ सहसा हो उठतीं निर्मम, कठोर।
दाँतों से अधर दबा,
आँखों का अश्रु रोक,
वलि-बेला की आरती, पुष्प, रोली सहेज,
पुरुषों को रण में भेज
चंडिकाएँ सगर्व
सिन्दूर लेप घर-घर उमंग की शिखा सजाती हैं।

विजयी अगर स्वदेश,
प्रिया-प्रियतम का फिर नाता है।
विजयी अगर स्वदेश,
पुरुष फिर पुत्र, त्रिया माता है।

किन्तु, पताका झुकी अगर बलिदान की,
गरदन ऊँची रही न हिन्दुस्तान की,
पुरुष पीठ पर लिये घाव रोते रहें,
आँसू से अपना कलंक धोते रहें।

पर, जातीय कलंक
देश की माताएँ सहतीं नहीं;
परंपरा है, चीख-चीख
वे पीड़ाएँ कहतीं नहीं।

हारे नर को देख
देवियाँ दबी ग्लानि के भार से
जल उठती हैं, अगर
काट सकतीं न कंठ तलवार से।

७-११-६२ ई०]

आपद्धर्म

अरे उर्वशीकार !
कविता की गरदन पर धर कर पाँव खड़ा हो।
हमें चाहिए गर्म गीत उन्माद, प्रलय का,
अपनी ऊँचाई से तू कुछ और बड़ा हो।

कच्चा पानी ठीक नहीं,
ज्वर-ग्रसित देश है।
उबला हुआ समुष्ण सलिल है पथ्य,
वही परिशोधित जल दे।
जाड़े की है रात, गीत की गरमाहट दे,
तप्त अनल दे।

रोज़ पत्र आते हैं, जलते गान लिखूं मैं,
जितना हूँ, उससे कुछ अधिक जवान दिखूं मैं।

और, सत्य ही, मैं भी युग के ज्वरावेग से चूर,
दूर उर्वशी-लोक से,
गयी जवानी की बुझती भट्ठी फिर सुलगाता हूँ।
जितनी ही फैलती देश में भीति युद्ध की,
मैं उतना ही कंठ फाड़, कुछ और ज़ोर से,
चिल्लाता, चीखता, युद्ध के अंध गीत गाता हूँ।

किन्तु, हृदय से जब भी कोई आग उमड़ कर
चट्टानों की वज्र-मधुर रागिनी
कंठ-स्वर में भरने आती है,
ताप और आलोक, जहाँ दोनों बसते आये थे,
वहाँ दहकते अंगारे केवल धरने आती है ;
तभी प्राण के किसी निभृत कोने से
कहता है कोई,माना,विस्फोट नहीं यह व्यर्थ है,
किन्तु, बुलाने को जिसको तू गरज रहा है,
उसे पास लाने में केवल गर्जन नहीं समर्थ है।

रोष, घोष, स्वर नहीं, मौन शूरता मनुज का धन है।
और शूरता नहीं मात्र अंगार,
शूरता नहीं मात्र रण में प्रकोप से धुँधुआती तलवार
शूरता स्वस्थ जाति का चिर-अनिद्र, जाग्रत स्वभाव,
शूरत्व मृत्यु के वरने का निर्भीक भाव ;
शूरत्व त्याग ; शूरता बुद्धि की प्रखर आग ;
शूरत्व मनुज का द्विधा-मुक्त चिंतन है।

विजय-केतु गाड़ते वीर जिस गगनजयी चोटी पर,
पहले वह मन को उमंग के बीच चढ़ी जाती है,
विद्युत् बन छूटती समर में जो कृपाण लोहे की,
भट्ठी में पीछे, विचार में प्रथम गढ़ी जाती है।

आँख खोल कर देख, बड़ी से बड़ी सिद्धि का
कारण केवल एक अंश तलवार है ;
तीन अंश उसका निमित्त संकल्प-शुद्धि है,
आशा है, साहस है, शुद्ध विचार है।

सोच, कहाँ है उस दुरन्त,
पापिनी बुद्धि का मूल, तुझे जो
बार-बार आकर अपनी छलना से छल जाती है।
बार-बार तू उदय-शृङ्ग पर चढ़ क्यों गिर जाता है?
बार-बार कर में आकर क्यों सिद्धि निकल जाती है?

ओ विराग को सकल सुकृत का मर्म समझनेवाले!
आत्मघात को उच्च धर्म के हित अर्पित बलिदान,
शत्रु के रक्त-पान को
मानवता का पतन, कलुष का कर्म समझनेवाले!

ओ निरग्नि! ओ शान्त! प्रश्न तेरा गंभीर, गहन है।
रोष, घोष, हुंकार, गर्जनों से उद्धार न होगा।
भुजा नहीं बलहीन,
रक्त की आभा नहीं मलीन,
अरे, ओ नर पवित्र! प्राचीन!
दीन, लेकिन, तेरा चिंतन है।

विजय चाहता है, सचमुच,
तू अगर विषैले नाग पर,
तो कहता हूँ, सुन,
दिल में जो आग लगी है,
उसे बुद्धि में घोल,
उठाकर ले जा उसे दिमाग पर।

तुझ से जो माँगते उबलते गीत अनल के,
पूछ कि वे कूटस्थ आग लेकर क्या भला करेंगे ?
क्या प्रमाण है, यह सूखी बारूद नहीं सीलेगी ?
घर में बिखरी हुई बर्फ वे कहाँ समेट धरेंगे ?

अच्छा है, वे लड़ें नहीं, जिनके जीवन में
विचिकित्सा जीवित है धर्म-अधर्म की।
अच्छा है, वे अड़ें आन पर नहीं,
न खेलें कभी जान पर,
चबा रही है जिन्हें युगों से
दुबिधा कर्म-अकर्म की।

क्योंकि युद्ध में जीत कभी भी उसे नहीं मिलती है,
प्रज्ञा जिसकी विकल,
द्विधा-कुंठित कृपाण की धार है,
परम धर्म पर टिकने की सामर्थ्य नहीं है,
और न आपद्धर्म जिसे स्वीकार है।

तुझसे जो माँगते उबलते गीत अनल के,
पूछ, धर्म की वे किंचित् सीमा स्वीकार करेंगे ?
मानवीय मूल्यों की जब कुछ आहुतियाँ पड़ती हों,
रोयेंगे तो नहीं ? पाप से तो वे नहीं डरेंगे ?

अगर कहे तू, युद्ध पुष्प, बमबाजी फुलझड़ियाँ हैं,
ये रोने की नहीं, मस्त, खुश होने की घड़ियाँ हैं ;
दाँतों से तरजनी दबा वे चुप तो नहीं रहेंगे ?
तुझ को वे दानव या दीवाना तो नहीं कहेंगे ?

आपद्धर्म

तब भी श्येन-धर्म ही सच है, ग़लत युद्ध में पिक है,
पूर्ण चेतना ग़लत, आज पागलपन स्वाभाविक है।

जूझ वीरता से, प्रचण्डता से, बलिष्ठ तन, मन से ;
आँख मूंद कर जूझ अंध निर्दयता, पागलपन से।

समर पाप साकार, समर क्रीड़ा है पागलपन की,
सभी द्विधाएँ व्यर्थ समर में साध्य और साधन की।

एक वस्तु है ग्राह्य युद्ध में,
और सभी कुछ देय है ;
पुण्य हो कि हो पाप,
जीत केवल दोनों का ध्येय है।

सच है, छल की विजय, अन्त तक,
विजय नहीं, अभिशाप है।
किन्तु, भूल मत, और पाप जितने घातक हों,
समर हारने से बढ़कर घातक न दूसरा पाप है।

१०-१२-६२ ई०]

पाद-टिप्पणी

(युद्ध-काव्य की)

मेरी कविताएँ सुन कर खुश होने वाले!
तुझे ज्ञात है, इन खुशियों का क्या रहस्य है?

मेरे सुख का राज़? सभ्यता के भीतर से
उठती है जो हूक, बुद्धि को बिकलाती है।
कोई उत्तर नहीं। हार कर मैं मन-मारा
चौराहे पर खड़ा जोर से चिल्लाता हूँ।

गर्जन धावा नहीं; स्वरों का घटाटोप है;
परित्राण का शिखर; पलायन उन प्रश्नों से
जिन का उत्तर नहीं, न कोई समाधान है।

तेरे सुख का भेद? कहीं भीतर प्राणों में
तुझ को भी काटते पाप; मन बहलाने को
तू मेरी वारुणी पान कर चिल्लाता है।

कौन पाप? है याद, उचक्के जब मंचों से
गरज रहे थे, तू ने उन्हें प्रणाम किया था?
पहनाया था उसे हार, जिस के जीवन का
कंचन है आराध्य, त्याग सूती चप्पल है।

कौन पाप? है याद, भेड़िये जब टूटे थे
तेरे घर के पास दीन-दुर्बल भेंड़ों पर,
पचा गया था क्रोध सोच कर तू यह मन में,
कौन विपद में पड़े बली से बैर बढ़ा कर?

जब-जब उठा सवाल, सोचने से कतरा कर
खड़ा रहा काहिल तू इस बोदी आशा में,
कौन करे चिंतन? खरोंच मन पर पड़ती है।
जब दस-बीस जवाब दुकानों में उतरेंगे,
हम भी लेंगे उठा एक अपनी पसन्द का।

जब चुनाव आया, तेरी आवाज बन्द थी;
तू शरीफ था, बड़ा चतुर, नीरव तटस्थ था।
जब भी दो दल लड़े, मंच से खिसक गया तू,
बड़ी बुद्धि के साथ सोच, यह कलह व्यर्थ है।
मुझ को क्या? मैं गन्धमुक्त, सब से अलिप्त हूँ।

अब समझा, चुप्पी कदर्यता की वाणी है?
बहुत अधिक चातुर्य आपदाओं का घर है।
दोषी केवल वही नहीं, जो नयनहीन था,
उस का भी है पाप, आँख थी जिसे, किन्तु, जो
बड़ी-बड़ी घड़ियों में मौन, तटस्थ रहा है।

सीधा नहीं सवाल, युद्ध घनघोर प्रश्न है!
अधी समस्त समाज, बाँध में छेद बहुत हैं।
जो सब से है अनघ, दोष कुछ उस का भी है।

कह सकता है, जो विपत्तियाँ अब आयी हैं,
तू ने उन का कभी नहीं आह्वान किया था
ग़लत हुक्म कर दर्ज संचिकाओं पर अथवा
ग़लत ढंग से अपना घर-आँगन बुहार कर?

सरहद पर ही नहीं, मोरचे खुले हुए हैं
खेतों में, खलिहान, बैठकों, बाजारों में!
जहाँ कहीं आलस्य, वहीं दुर्भाग्य देश का;
जो भी नहीं सतर्क, सभी के लिए विपद है।

और आज भी जिस पापी का सही नहीं ईमान,
(भले वह नेता हो, शासक हो या दूकानदार हो)
चीनी है, दुश्मन है, सब के लिए काल है!

कल जो किया गुनाह, आग बन कर आया है।
पर, जो हम कर रहे आज, उस का क्या होगा?
समझ नहीं नादान! पाप से छूट गये हम
सुन कर गर्जन-गीत या कि हुंकार उठा कर।

अपनी रक्षा के निमित्त औरों को रण में
कटवाना है पाप; पाप है यह विचार भी,
जगें युवक सीमा पर, हम सोने जाते हैं।

६-११-६२]

शान्तिवादी

पुत्र मृत्यु के लिए, पिता रोने को,
माँ धुनने को सीस, वत्स आँसू पीने को,
लुटने को सिन्दूर,
उत्तराएँ विधवा होने को।

सरहद के उस पार हो कि इस पार हो,
युद्ध सोचता नहीं, कौन किसका द्रोही है।
उसका केवल ध्येय, ध्वंस हो मानवता का,
मनुज जहाँ भी हो, यम का आहार हो।

माताओं को शोक, युवतियों को विषाद है ;
बेकसूर बच्चे अनाथ होकर रोते हैं!
शान्तिवादियो! यही तुम्हारा शान्तिवाद है?

अब मत लेना नाम शान्ति का,
जिह्वा जल जायेगी,
ले-देकर जो एक शब्द है बचा, उसे भी,
तुम बकते यदि रहे,
धरित्री समझ नहीं पायेगी।

शान्तिवाद का यह नवीन सारथी तुम्हारा
नहीं शान्ति का सखा,
हलाकू है, नीरो, नमरूद है।
और उड़ाये हैं इसने उज्ज्वल कपोत जो,
उनके भीतर भरी हुई बारूद है।

०-१२-१९६२]

अहिंसावादी का युद्ध-गीत

हाय, मैं लिखूं युद्ध के गीत!
बन्धु! हो गयी बड़ी अनरीत!
कंठ उर अंतर के विपरीत;
देशवासी! जागो! जागो!
गाँधी की रक्षा करने को गाँधी से भागो!

(२)

रुधिर में रखें शीत या ताप?
अहिंसा वर है अथवा शाप?
युद्ध है पुण्य याकि दुष्पाप?
आज सारा विवाद त्यागो।
गाँधी की रक्षा करने को गाँधी से भागो।

(३)

सँभालें कहाँ बुद्ध का दाय?
आज छूंछे सब पिटक-निकाय।
कारगर कोई नहीं उपाय।
गिराओ बम, गोली दागो।
गाँधी की रक्षा करने को गाँधी से भागो।

११-११-६२]

इतिहास का न्याय

दूर भविष्यत् के पट पर जो वाक्य लिखे हैं,
पढ़ लेना, भवितव्य अगर आगे जीवित रहने दे।

गाँधी, बुद्ध, अशोक नाम हैं बड़े दिव्य स्वप्नों के।
भारत स्वयं मनुष्य-जाति की बहुत बड़ी कविता है।

कह लेना यह कथा, अगर अपनी विषाक्त डाढ़ों से
काल छोड़ दे तुझे और भवितव्य अगर कहने दे।

दर्शन की लहरें मत अधिक उछाल,
विचारों के विवर्त में पड़ा
आदमी बहुत विवश होता है।
मगरमच्छ नोचते देह का मांस और वह
छन्दों में सोचता, ऋचाओं-श्लोकों में रोता है।

दूर क्षितिज के सपने में मत भूल,
देख उस महासत्य को,
जिसकी आग प्रचण्ड, दाह दारुण, प्रत्यक्ष, निकट है।

गाँधी, बुद्ध, अशोक विचारों से अब नहीं बचेंगे।
उठा खड्ग, यह और किसी पर नहीं,
स्वयं गाँधी, गंगा, गौतम पर ही संकट है।

पशुता के दुर्मद झकोर में हाथ उठा कर
क्या करना आह्वान शील का, सहिष्णुता का, स्नेह का ?
आत्मा की तलवार सर्वथा वहाँ व्यर्थ है,
जहाँ अखाड़ा खुला हुआ हो देह का।

द्विधा व्यर्थ, आगे का क्या इतिहास कहेगा।
द्विधा व्यर्थ, युग के चिंतन का कहाँ ध्यान है।
दर्शन करता सदा मूक अनुसरण क्रिया का।
और जिसे हम कहते हैं इतिहास,
बड़ा ही बुद्धिमान है।

उच्च मनुजता को ठुकराने से तो वह डरता है।
किन्तु, उच्च गुण के कारण जो रण में हार गये हैं,
उन पराजितों की किस्मत पर रोता है इतिहास,
पर, अपाहिजों का कलंक वह क्षमा नहीं करता है।

११-१२-६२ ई०]

एनार्की

(१)

"अरे, अरे, दिन-दहाड़े ही ज़ुल्म ढाता है!
रेलवे का स्लीपर उठाये कहाँ जाता है?"

"बड़ा बेवकूफ़ है, अजब तेरा हाल है;
तुझे क्या पड़ी है? य' तो सरकारी माल है।"

"नेता या प्रणेता! तेरा ठीक तो ईमान है?
पर, दिया जाता अब देश में न कान है।
बने जाते कल-कारखाने आलीशान भी,
साथ-साथ तेरे कुछ अपने मकान भी।"

'भाई, बकने दो उन्हें, तुम तो सुजान हो,
कविता बनाते हो, हमारे अभिमान हो।
मान लो, कभी जो चूर-घुन थोड़ा पाते हैं,
भारत से बाहर तो फेंक नहीं आते हैं।
जो भी बनवाये, अपना ही व' भवन है,
देश में ही रहता है, देश का जो धन है।"

"और, अरे यार! तू तो बड़ा शेर-दिल है,
बीच राह में ही लगा रखी महफ़िल है!
देख, लग जायँ नहीं मोटर के झटके,
नाचना जो हो तो नाच सड़क से हटके।"

"सड़क से हट तू ही क्यों न चला जाता है?
मोटर में बैठ बड़ी शान दिखलाता है!
झाड़ देंगे, तुझमें जो तड़क-भड़क है,
टोकने चला है, तेरे बाप की सड़क है?

सिर तोड़ देंगे, नहीं राह से टलेंगे हम,
हाँ, हाँ, जैसे चाहें, वैसे नाच के चलेंगे हम।
बीस साल पहले की शेखी तुझे याद है।
भूल ही गया है, अब भारत आज़ाद है।"

(२)

सुनिये क्रोपाटकिन - गोरकी!
भारत में फैली है आज़ादी बड़े ज़ोर की।
सुनता न कोई फ़रियाद है।
देखिये जिसे ही, वही ज़ोर से आज़ाद है।

लोग हैं आज़ाद बिलखाने को।
नेता हैं आज़ाद जहाँ चाहें, वहाँ जाने को।
अफ़सर परम स्वतन्त्र हैं।
मंत्रीजी हज़ार पढ़ें, लगते न मंत्र हैं।
साहब तो खुद परीशान हैं।
चपरासी देते उन्हें पानी न तो पान हैं।

अजब हमारा यह तन्त्र है।
नक़ली दवाइयों का व्यापारी स्वतन्त्र है।
पुलिस करे जो कुछ, पाप है।
चोर का जो चचा है, पुलिस का भी बाप है।
अखबार मुक्त हैं चुपाने को,
विज्ञापनदाताओं का मरम छुपाने को।

और छात्र बड़े पुरज़ोर हैं,
कालिजों में सीखने को आये तोड़-फोड़ हैं।
कहते हैं, पाप है समाज में,
धिक् हम पै! जो कभी पढ़ें इस राज में।
अभी पढ़ने का क्या सवाल है?
अभी तो हमारा धर्म एक हड़ताल है।

कोई नहीं क़ैद है कपाट में,
हाट में जो आया नहीं, होगा अभी बाट में।
हाथ में हो केक या कि रोटी हो,
सूट में हो लैस या कि पहने लँगोटी हो,
कवि हो कि नेता हो कि छात्र हो,
या कि ठेला हाँकता हो, करुणा का पात्र हो;
एक बात में सभी समान हैं;
दूसरों की बात पै न देते कभी कान हैं।

हलचल बड़ी है बाज़ार में,
कोई पाँव-पैदल, चढ़ा है कोई कार में।
लेकिन, सभी की यह टेक है,
अब किसी में भी नहीं बुद्धि या विवेक है।
सरकार से न यदि ऊबेगा,
डूबेगा, अवश्य, यह सारा देश डूबेगा।

(३)

सोच-सोच आनन मलीन है,
एक ओर पाकिस्तान, एक ओर चीन है।
समझ न पड़ता चरित्र है,
रूस-अमरीका में से कौन बड़ा मित्र है।

दोस्त ही है, देख के डरो नहीं।
कम्यूनिस्ट कहते हैं, चीन से लड़ो नहीं।
चिंतन में सोशलिस्ट गर्क है,
कम्यूनिस्ट और कांगरेसी में क्या फ़र्क है?
जनसंघी भारतीय शुद्ध हैं।
इसीलिए, आज महावीर बड़े क्रुद्ध हैं।

और कांगरेसी भी तबाह है।
ठीक-ठीक़ जान ही न पाता, कौन राह है।
दायाँ या कि बायाँ? कौन ठीक है?
पूछता है, यार, गाँधीजी की कौन लीक है?

एक कहता है, "चलो रूस को।"
दूसरा है चीखता कि "मारो मनहूस को।
वाणी की स्वतन्त्रता प्रमुख है।
चुप रहने से बड़ा और कौन दुख है?'

"तो फिर अमेरिका की बात हो?"
"लोभी, मेरे मस्तक पै भारी वज्रपात हो।
गाँधीजी की बात नहीं याद है?
आदमी को यंत्र कर देता बरबाद है।"

"तो फिर चलायें, चलो, तकली।"
"हम गाँधीजी के भक्त होंगे नहीं नक़ली।
दबा नहीं अपने को पायेंगे;
गाँधीजी के पास हरगिज नहीं जायेंगे।"

"तब तुम्हीं बोलो, हम क्या करें?"
चाय पियें और जी में आये जो, बका करें।
बकना ही असली स्वराज है।
बाक़ी तो जहाँ भी देखो, डाकुओं का राज है।

भोर में पुकारो सरदार को,
जीत में जो बदल देते थे कभी हार को।
तब कहो, ढोल की य' पोल है,
नेहरू के कारण ही सारा गण्डगोल है।

फिर ज़रा राजाजी का नाम लो।
याद करो जे०पी० को, विनोबा को प्रणाम दो।
तब कहो, लोहिया महान है।
एक ही तो वीर यहाँ सीना रहा तान है।

ऊपर बढ़े जो और गरमी,
एकबारगी दो छोड़ बची-खुची नरमी।
कहो, राम! तिमिर में राह दो,
डिमोक्रेसी दूर करो, हमें तानाशाह दो।

और फिर माला ले के हाथ में
देवता से माँगो वरदान आधी रात में।
दूर रखो हमको गुनाह से,
देश को बचाये रखो राम! तानाशाह से।

क्षमा करो, क्षमा, मन्द मति है;
नेहरू को छोड़ हमें और नहीं गति है।
और जब पुनः प्रकाश हो;
बोलो, कांगरेसियो! तुम्हारा सर्वनाश हो।

(४)

जहाँ भी सुनो, वहीं आवाज़ है,
भारत में आज, बस, जीभ का स्वराज है।
और मंत्री भी न अप्रमुख हैं।
एक कैबिनेट के अनेक यहाँ मुख हैं।

एक कहता है, हाहाकार है,
दाम पै लगाम कसो, देश की पुकार है।
दूसरे की मति अति शुद्ध है,
कहता है, नीति यह धर्म के विरुद्ध है।

गाँधीजी की याद नहीं टेक है?
पूंजीपति और जनता का भाग्य एक है।
आज़ादी की धार घहराने दो,
जो भी चाहता हो, उसे छूट के कमाने दो।

(५)

चिंतकों में अजब उमंग है।
जनता चकित और सारा विश्व दंग है।
एक कहता है, किस बात में
हम हैं स्वतन्त्र, यदि लाठी नहीं हाथ में?

घूम रहा देश किस ध्यान में,
बकरी का दूध पी के शेरों के जहान में?
वही है स्वतंत्र, जो समर्थ है,
परमाणु-बम जो नहीं तो सब व्यर्थ है।

दूसरा है रोता, विधि वाम है।
सनाओं का गाँधीजी के देश में क्या काम है?
अहिंसा का तत्त्व यदि जानते,
हाय, नेहरू जो गाँधीजी को पहचानते,
सीमा पर शत्रु कोई आता क्यों?
आँखें दिखला के हमें कोई धमकाता क्यों?
भीति युद्ध-बीज सदा बोती है।
शस्त्र जहाँ रहते हैं, हिंसा वहीं होती है।

(६)

राम जानें, भीतर क्या बल है!
तब भी बखूबी यह देश रहा चल है।
गण, जन, किसी का न तंत्र है।
साफ़ बात यह है कि भारत स्वतन्त्र है।
भिन्नता सँभाले तार-तार की,
राज करती है यहाँ चैन से 'एनारकी'।

११-१०-६२]

एक बार फिर स्वर दो १

एक बार फिर स्वर दो।
अब भी वाणीहीन जनों की दुनिया बहुत बड़ी है।
आशा की बेटियाँ आज भी नीड़ों में सोती हैं
सुख से नहीं ; विवश उड़ने के पंख नहीं होने से,
और मूक इसलिए कि उनके कंठ नहीं खुलते हैं।
सोचा है यह कभी कि गूँगापन कैसी पीड़ा है?
भीतर-भीतर दर्द भोगना, लेकिन, बँटा न पाना
उसे किसी से कह कर, मेरे मन को चोट लगी है।
बोल नहीं सकता जो, उसका भी दुख कोई दुख है?
कितने लोग समझते हैं भाषा उदास आँखों की?

एक बार फिर स्वर दो।
मूक, उदासी-भरे, दीन बेटे संपन्न मही के
मृत्यु-विवर के पास आज भी जीवन खोज रहे हैं।
उभर रहीं कोंपलें भेद कर सड़े हुए पत्तों को,
छाल तोड़ कर कढ़ने को टहनी छटपटा रही है।
प्रसवालय में घात लगाये खड़ी मृत्यु के मुख से
बचा नर्स भागी लेकर जिस नन्हें-से जीवन को,
देखा, वह कैसे हँसता था? मानो, समझ गया हो,
'अच्छा! यहाँ जन्म लेते ही यह सब भी होता है?'
और मृत्यु किस भाँति पराजय पर फुंकार रही थी?

एक बार फिर स्वर दो।
जो अदृश्य से निकल जन्म लेने के लिए विकल हैं,
आगाही दो उन्हें, यहाँ जीवन की कनक-पुरी में
पहले दरवाजे पर भी साँपों की कमी नहीं है ;
आगे तो ये दुष्ट और भी बढ़ते ही जाते हैं।
और दुःख तो यह कि यहाँ कुछ पता नहीं करुणा का,
डँसे एक को सर्प अगर तो दस मिल कर हँसते हैं।
कहो जन्म लेनेवालों से, सोच-समझ कर आयें ;
यहाँ भेड़िये गुर्राते हैं बिना किसी कारण के
या इसलिए कि हम अपना शोणित न उन्हें देते हैं।

एक बार फिर स्वर दो।
उन्हें, प्रेम-गृह में जो सपनों से प्रमत्त आये थे,
लेकिन, अब वाणिज्य देख, विस्मय से, ठमक गये हैं।
और उन्हें जो भ्रम-विनाश की चोट हृदय पर खाकर
इस गृह से चुपचाप निकल निर्जन में चले गये हैं।

एक बार फिर स्वर दो।
कहो जन्म लेनेवालों से, जिन अप्रतिम गुणों से
भेज रही है प्रकृति, बड़े नाजों से, उन्हें सजा कर,
सब से पहले उन्हीं गुणों की भू पर लूट मचेगी।
वृक, शृगाल, अहि, रँगी चोंचवाली कठोर गृध्रिणियाँ,
सब टूटेंगे एक साथ, संघर्ष भयानक होगा।
बड़ी बात होगी, इन तूफानों से अगर बचा कर,
किसी भाँति अन-बुझे दीप वे वापस ले जायेंगे।

२५-५-६० ई०]

एक बार फिर स्वर दो २

एक बार फिर स्वर दो।
जिस गंगा के लिए भगीरथ सारी आयु तपे थे,
और हुई जो विवश छोड़ अंबर भू पर बहने को
लाखों के आँसुओं, करोड़ों के हाहाकारों से ;
लिये जा रहा इन्द्र कैद करने को उसे महल में।
सींचेगा वह गृहोद्यान अपना इसकी धारा से
और भगीरथ के हाथों में डंडा थमा कहेगा,
अगर मार्क्स को मार सके तुम, हम तुमको पूजेंगे ;
हार गये तो, गंगा की धारा जो ले आये हो,
उसी धार में बोर-बोर हम तुम्हें मार डालेंगे।

एक बार फिर स्वर दो।
देख रहे हो, गाँधी पर कैसी विपत्ति आयी है ?
तन तो उसका गया, नहीं क्या मन भी शेष बचेगा ?
चुरा ले गया अगर भाव-प्रतिमा कोई मन्दिर से,
उन अपार, असहाय, बुभुक्षित लोगों का क्या होगा,
जो अब भी हैं खड़े मौन गाँधी से आस लगा कर ?

एक बार फिर स्वर दो।
कहो, सर्वत्यागी वह संचय का सन्तरी नहीं था,
न तो मित्र उन साँपों का जो दर्शन विरच रहे हैं
दंश मारने का अपना अधिकार बचा रखने को।

एक बार फिर स्वर दो।
उन्हें पुकारो, जो गाँधी के सखा, शिष्य, सहचर हैं।
कहो, आज पावक में उनका कंचन पड़ा हुआ है।
प्रभापूर्ण हो कर निकला यह तो पूजा जायेगा ;
मलिन हुआ तो भारत की साधना बिखर जायेगी।

एक बार फिर स्वर दो।
कहो, शान्ति का मन अशान्त है, बादल गुमर रहे हैं,
तप्त, ऊमसी हवा टहनियों में छटपटा रही है।
गाँधी अगर जीत कर निकले, जलधारा बरसेगी,
हारे तो तूफान इसी ऊमस से फूट पड़ेगा।

२६-५-६१ ई०]

तब भी आता हूँ मैं

टूट गये युग के दरवाजे ?
बन्द हो गयी क्या भविष्य की राह ?
तब भी आता हूँ मैं।

बल रहते ऐसी निर्बलता,
स्वर रहते स्वरवालों के शब्दों का अर्थाभाव !
दोपहरी में ऐसा तिमिर नहीं देखा था।

खिसक गयी शृंखला सितारों की ? प्रकाश के
पुत्र वहाँ अब नहीं, जहाँ पहले उगते थे ?

मही छूट सहसा विश्वंभर के प्रबन्ध से,
सचमुच ही, पड़ गयी मनुष्यों के हाथों में ?

धुआँ, धुआँ सब ओर, चतुर्दिक् घुटन भरी है ;
आँख मूंदने पर भी तो अब दीप्ति न आती।
तिमिर-व्यूह है ध्यान, गीत का मन काला है,
धूम-ध्वान्त फूटता कला की रेखाओं से।

तो यह सब क्या, इसी भाँति, चलता जायेगा ?
यह विषपूर्ण प्रवाह ? कुटिल यह घुटन प्राण की ?
और वायु क्या इसी भाँति भरती जायेगी
वणिक-तुला पर चढ़ी बुद्धि के फूत्कारों से ?

ना, गाँधी सेठों का चौकीदार नहीं है,
न तो लौहमय छत्र जिसे तुम ओढ़ बचा लो
अपना संचित कोष मार्क्स की बौछारों से।

इस प्रकार मत पियो, आग से जल जाओगे ;
गाँधी शरबत नहीं, प्रखर पावक-प्रवाह था।
घोल दिया यदि इत्र कहीं अपनी शीशी का,
अनलोदक दूषित-अपेय यह हो जायेगा।

ओ विशाल तम-तोम, चतुर्दिक् घिरी घटाओ !
कब जनमेगी अशनि तुम्हारी व्याकुलता से ?
धुओं और ऊमस में जो छटपटा रहा है,
वह प्रकाश कब तक खुलकर बाहर आयेगा ?

तब भी आता हूँ मैं

दोपहरी का अंधकार! ओ सूर्य, तुम्हारा
करने को उद्धार व्योम पर आते हैं हम,
आविष्कृत कर क्या नया प्रेम, शब्दों के भीतर
मूर्च्छित अर्थों को फिर आज जिलाते हैं हम।

पढ़ो, सामने के अक्षर क्या कहते हैं ये?
विनय विफल हो जहाँ, वाण लेना पड़ता है।
स्वेच्छा से जो न्याय नहीं देता है, उसको
एक रोज आखिर सब कुछ देना पड़ता है।

टूट गये युग के दरवाजे?
बन्द हो गयी क्या भविष्य की राह?
तब भी आता हूँ मैं।

१८-५-६० ई०]

समर शेष है

ढीली करो धनुष की डोरी, तरकस का कस खोलो,
किसने कहा, युद्ध की वेला गयी, शान्ति से बोलो?
किसने कहा, और मत बेधो हृदय वह्नि के शर से,
भरो भुवन का अंग कुसुम से, कुंकुम से, केशर से?
कुंकुम? लेपूं किसे? सुनाऊँ किसको कोमल गान?
तड़प रहा आँखों के आगे भूखा हिन्दुस्तान।

फूलों की रंगीन लहर पर ओ उतरानेवाले!
ओ रेशमी नगर के वासी! ओ छवि के मतवाले!
सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है,
दिल्ली में रौशनी, शेष भारत में अँधियाला है।
मखमल के पर्दों के बाहर, फूलों के उस पार,
ज्यों का त्यों है खड़ा आज भी मरघट-सा संसार।

वह संसार जहाँ पर पहुँची अब तक नहीं किरण है,
जहाँ क्षितिज है शून्य,अभी तक अंबर तिमिर-वरण है।
देख जहाँ का दृश्य आज भी अंतस्तल हिलता है,
माँ को लज्जा-वसन और शिशुको न क्षीर मिलता है।
पूछ रहा है जहाँ चकित हो जन-जन देख अकाज,
सात वर्ष हो गये, राह में अटका कहाँ स्वराज?

अटका कहाँ स्वराज? बोल दिल्ली! तू क्या कहती है?
तू रानी बन गयी, वेदना जनता क्यों सहती है?
सबके भाग दबा रक्खे हैं किसने अपने कर में?
उतरी थी जो विभा, हुई वन्दिनी, बता, किस घर में?
समर शेष है, यह प्रकाश वन्दी-गृह से छूटेगा,
और नहीं तो तुझ पर पापिनि! महावज्र टूटेगा।

समर शेष है, इस स्वराज्य को सत्य बनाना होगा।
जिसका है यह न्यास, उसे सत्वर पहुँचाना होगा।
धारा के मग में अनेक पर्वत जो खड़े हुए हैं,
गंगा का पथ रोक इन्द्र के गज जो अड़े हुए हैं,
कह दो उनसे, झुके अगर तो जग में यश पायेंगे,
अड़े रहे तो ऐरावत पत्तों-से बह जायेंगे।

समर शेष है, जनगंगा को खुल कर लहराने दो,
शिखरों को डूबने और मुकुटों को बह जाने दो।
पथरीली, ऊँची जमीन है? तो उसको तोड़ेंगे।
समतल पीटे बिना समर की भूमि नहीं छोड़ेंगे।
समर शेष है, चलो ज्योतियों के बरसाते तीर,
खंड-खंड हो गिरे विषमता की काली जंजीर।

समर शेष है, अभी मनुज-भक्षी हुंकार रहे हैं।
गाँधी का पी रुधिर जवाहर पर फुंकार रहे हैं।
समर शेष है, अहंकार इनका हरना बाकी है,
वृक को दंतहीन, अहि को निर्विष करना बाकी है।
समर शेष है, शपथ धर्म की, लाना है वह काल,
विचरें अभय देश में गाँधी और जवाहर लाल।

तिमिरपुत्र ये दस्यु कहीं कोई दुष्काण्ड रचें ना!
सावधान, हो खड़ी देश भर में गाँधी की सेना।
बलि देकर भी बली! स्नेह का यह मृदु व्रत साधो रे!
मन्दिर औ' मस्जिद, दोनों पर एक तार बाँधो रे!
समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।

१९५३ ई०]

---

१ जवाहर लाल नेहरू पर एक व्यक्ति ने छुरा चलाने की कोशिश की थी।

जवानी का झंडा

घटा फाड़ कर जगमगाता हुआ
आ गया देख, ज्वाला का वाण ;
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान !

(१)

सहम करके चुप हो गये थे समुन्दर
अभी सुनके तेरी दहाड़ ;
जमीं हिल रही थी, जहाँ हिल रहा था,
अभी हिल रहे थे पहाड़।
अभी क्या हुआ, किसके जादूने आ करके
शेरों की सी दी जुबान ?
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान !

(२)

खड़ा हो कि धौंसे बजा कर जवानी
सुनाने लगी फिर धमार ;
खड़ा हो कि अपने अहंकारियों को
हिमालय रहा है पुकार।
खड़ा हो कि फिर फूंक विष की लगा
धूर्जटी ने बजाया विषाण,
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान !

(३)

गरज कर बता सबको, मारे किसी के
मरेगा नहीं हिन्द - दश,
लहू की नदी तैर कर आ रहा है
कहीं से कहीं हिन्द - देश।
लड़ाई के मैदान में चल रहे ले के
हम उसका उड़ता निशान,
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान!

(४)

अहा! जगमगाने लगी रात की
माँग में रौशनी की लकीर,
अहा! फूल हँसने लगे, सामने
देख, उड़ने लगा वह अबीर।
अहा! यह उषा होके उड़ता चला
आ रहा देवता का विमान;
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ मेरे देश के नौजवान!

दिनकरजी के तीन अनूठे ग्रन्थ

उजली आग, चक्रवाल और नील कुसुम

१. उजली आग

लघु कथाओं की पुस्तक; विचारोत्तेजक गद्य-काव्य; दार्शनिक अनुभूतियाँ जगानेवाली रचना।

कुछ सम्मतियाँ

"इस रचना में दिनकर के काव्य के सभी गुण मौजूद हैं और कुछ ऐसे भी जो अन्यत्र नही हैं। ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे व्है नैननि त्यों-त्यों खरी निखरी-सी निकाई।" **—डाक्टर विश्वनाथ प्रसाद**

"तीखी चुभन है, गहरा व्यंग्य है और है मनोमोहक काव्यात्मक स्फुलिंगों की जगमगाहट।" **—इलाचंद्र जोशी**

"हिन्दी में अपने ढंग की यह अनूठी पुस्तक।" **—ब्रजशंकर वर्मा**

"उजली आग के छोटे-छोटे स्फुलिग मन की समस्याओं के घटाटोप को दूर करनेवाले हैं।" **—स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'**

"सुगम गद्य में ऐसी मार्मिक बाते कह जाना कमाल का काम है।"
—स्वर्गीय आचार्य शिवपूजन सहाय

"उजली आग हिन्दी में उस प्रकार की रचना का एकमात्र उल्लेखनीय उदाहरण है जिसे बंगला में 'रम्य रचना' कहने लगे हैं।"
—स्वर्गीय पंडित नलिनविलोचन शर्मा

"हिन्दी के गद्य-साहित्य में उजली आग एक बेजोड़ रचना है।"
—साप्ताहिक हिन्दुस्तान

"सीधी, सरल भाषा में ऐसी ऊँची-ऊँची बातों का बखान मिलता है, जो दर्शन का सूत्र बन सकती हैं।" **—साप्ताहिक योगी**

"इस शैली में एक विशेष प्रकार का पैगम्बराना ठाट दिखायी देता है।"
—नवभारत टाइम्स, दिल्ली

"हिन्दी में गद्य-काव्य असफल रचना का नमूना माना जाता रहा है। प्रसन्नता की बात है कि दिनकरजी ने उस कलंक को उजली आग से धो दिया।" **—दैनिक राष्ट्रदूत, जयपुर**

छपाई-सफाई नयनाभिराम। द्वितीय संस्करण। मूल्य ३) रु०

२. चक्रवाल

दिनकरजी की सभी कविताओं में से चुनी हुई सर्वोत्तम सौ कविताओं का संग्रह। साथ में अस्सी पृष्ठों की भूमिका जिसमें आधुनिक काव्य-धारा का गंभीर विवेचन किया गया है।

कुछ सम्मतियाँ

१. "अब तक जितने काव्य-संग्रह देखने में आये है, उनमें चक्रवाल का स्थान सर्वोपरि है।" **--स्वर्गीय आचार्य शिवपूजन सहाय**

२. "ऊषा की अरुणिमा और कमलों की मधुरिमा से यह पूर्ण है, उपहार मे देने योग्य।" **--स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त**

३. "हिन्दी की आधुनिक कविता के लिए चक्रवाल निःसंशय एक आधार-ग्रन्थ है।" **--स्वर्गीय पं० नलिनविलोचन शर्मा**

४. "यह ग्रन्थ दिनकर-काव्य-साधना का प्रतिनिधि-ग्रन्थ है।" **--स्वर्गीय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'**

५. "चक्रवाल एक ऐसे कवि की, प्रायः, पच्चीस वर्षों की काव्य-साधना का सार है, जिसका स्थान संपूर्ण देश के चोटी के कवियों में है।" **--डाक्टर नगेन्द्र**

६. "चक्रवाल में दिनकरजी के काव्य-सागर के मंथन से निकले हुए रत्न संचित है।" **--पंडित इलाचंद्र जोशी**

७. "एक युग की काव्य-प्रगति की दृष्टि से भी चक्रवाल एक महत्वपूर्ण और सग्रहणीय काव्य-सग्रह है।" **--नवभारत टाइम्स, दिल्ली**

८. "बंगला में जैसे रवीन्द्रनाथ की "चयनिका" और "संचयिता" तथा नजरुल इस्लाम की "संचिता" का आदर हुआ, हिन्दी मे चक्रवाल का सम्मान उसी रूप मे होना चाहिए।" **--साप्ताहिक योगी**

९. "जो पाठक चक्रवाल को पढेगे, उन्हे दिनकर-काव्य का क्रमिक विकास आप-से-आप ज्ञात हो जायेगा।" **--साप्ताहिक हिन्दुस्तान**

१०. "जिस पाठक की मेज पर चक्रवाल की एक प्रति मौजूद है, वह मजे मे कह सकता है कि दिनकरजी के समग्र काव्य का सार भाग उसके पास है।" **--दैनिक राष्ट्रदूत, जयपुर**

सुन्दर, स्वच्छ छपाई। सजिल्द। मूल्य १०) रु०

३. नील कुसुम

दिनकरजी की स्फुट कविताओं का संग्रह।
पुरस्कृत और बहुविध प्रशंसित ग्रन्थ।

केवल दो सम्मतियाँ

१. "अपने जीवन-काल में कवि को अनेक बार अपनी प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है। दिनकरजी की प्रतिभा का तेज सर्वस्वीकृत है, किन्तु, उसके लिए यदि किसी नवीन प्रमाण की आवश्यकता थी तो वह प्रमाण 'हिमालय का संदेश' है।" (यही नील कुसुम की अन्तिम कविता है।) **--साप्ताहिक हिन्दुस्तान**

२. "रेणुका में जिस कवि का समारंभ था, नील कुसुम में वह परिपक्वता के सोपान पर चढ़कर एक नये जीवन में प्रवेश करता है।" **--दैनिक राष्ट्रदूत**

स्वच्छ छपाई। सुबद्ध। तृतीय संस्करण। मूल्य ३) रु०

समस्त दिनकर-साहित्य की सूची

काव्य

१.	उर्वशी (महाकाव्य ; सचित्र ; द्वितीय संस्करण)	९) रु०
२.	आत्मा की आँखें (नये ढंग की कविताएँ)	४) रु०
३.	कोयला और कवित्व (स्फुट कविताएँ)	३) रु०
४.	मृत्ति-तिलक (कविताएँ)	२) रु०
५.	दिनकर की सूक्तियाँ (कविताएँ)	२॥) रु०
६.	चक्रवाल (चुनी हुई सौ कविताओं का संग्रह)	१०) रु०
७.	नील कुसुम (कविताएँ)	३) रु०
८.	परशुराम की प्रतीक्षा (देश-भक्ति की कविताएँ)	३) रु०
९.	सीपी और शंख (नये ढग की अद्‌भुत कविताएं)	२॥) रु०
१०.	नये सुभाषित (छोटी-छोटी कविताएँ)	१॥) रु०
११.	रश्मिरथी (विख्यात खंडकाव्य ; संपूर्ण)	५) रु०
१२.	रश्मिरथी (संक्षिप्त)	१॥) रु०
१३.	कुरुक्षेत्र (विख्यात युद्ध-काव्य)	३॥) रु०
१४.	रेणुका (दिनकरजी का प्रथम काव्य-संग्रह)	३) रु०
१५.	हुंकार (क्रान्तिकारी कविताओं का संग्रह)	२॥) रु०
१६.	रसवंती (शृंगार की कविताएँ)	२॥) रु०
१७.	द्वन्द्वगीत (दिनकरजी की विख्यात रूबाइयाँ)	१॥) रु०
१८.	बापू (गांधीजी पर तीन कविताएँ)	१॥) रु०
१९.	सामधेनी (क्रान्तिकारी कविताओं का संग्रह)	२॥) रु०
२०.	इतिहास के आँसू (कविताएँ)	३) रु०
२१.	दिल्ली (दिल्ली पर विरचित चार कविताएँ)	१) रु०
२२.	नीम के पत्ते (व्यग्यात्मक कविताएँ)	१) रु०

गद्य

२३.	संस्कृति के चार अध्याय (संशोधित तृतीय संस्करण)	१५) रु०
२४.	उजली आग (रम्य रचना)	३) रु०
२५.	मिट्टी की ओर (आलोचना)	४) रु०
२६.	काव्य की भूमिका (आलोचना)	४) रु०
२७.	पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण (आलोचना)	४) रु०
२८.	अर्धनारीश्वर (निबंध-संग्रह)	५) रु०
२९.	वट-पीपल (निबंध-संग्रह)	३) रु०

३०.	वेणुवन (निबंध-संग्रह)	३) रु०
३१.	रेती के फूल (निबंध-संग्रह)	३) रु०
३२.	हमारी सांस्कृतिक एकता	३) रु०
३३.	राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता	३) रु०
३४.	धर्म, नैतिकता और विज्ञान	१।।) रु०
३५.	देश-विदेश (यात्रा-विवरण)	२) रु०

बाल-साहित्य

३६.	मिर्च का मजा (बच्चों के लिए कविताएँ)	१) रु०
३७.	सूरज का व्याह (बच्चों के लिए कविताएँ)	१) रु०
३८.	धूप-छाँह (बच्चों के लिए कविताएँ)	१।।) रु०
३९.	चित्तौर का साका (ओजपूर्ण गद्य)	१।।) रु०
४०.	भारत की सांस्कृतिक कहानी (गद्य)	१) रु०

मई, १९६५ में प्रकाशित होगा

लोकदेव नेहरू

पंडित जवाहरलाल नेहरू के विषय में संस्मरण; स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास; भारत-विभाजन के बारे में ऐसी बहुत-सी रहस्यपूर्ण बातें जो हिन्दी मे पहले-पहल लिखी गयी हैं। मूल्य ५ रुपये।

पूरा सेट खरीदनेवालों को खास रियायत।
—कारी के लिए पत्र-व्यवहार करें।

पता

उ द या च ल

राजेन्द्र नगर, पटना - ४